Gyanvividha, Vol.-3; Issue-3 (July-September) 2026 : PP-154-161

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विषयों की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध-पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-6.125
Vol.-3; Issue-3 (July-Sept.) 2026
Page No.- 154-161
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

1. डॉ. राखी चौहान
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय.

2. प्रोफ. मीना चरांदा
प्रधानाचार्या, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय.

Corresponding Author :

डॉ. राखी चौहान
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय.

वन्दे मातरम् : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं दिव्यत्व का अनुशीलन

(राष्ट्रगीत की सार्ध-शताब्दी के आलोक में एक शोधपरक विवेचन)

सारांश (Abstract) : बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा सन् 1875 में रचित 'वन्दे मातरम्' भारतीय राष्ट्रीय चेतना का वह अद्वितीय स्वर है जिसने एक साहित्यिक कृति की सीमा लाँघकर स्वाधीनता-संग्राम के मंत्र, आंदोलन के उद्घोष और अंततः राष्ट्रगीत का स्थान प्राप्त किया। प्रस्तुत शोधपत्र इस रचना का द्विआयामी अनुशीलन प्रस्तुत करता है। प्रथम आयाम ऐतिहासिक है—रचना का युग-संदर्भ, 'आनन्दमठ' में इसका समावेश, 1896 के कांग्रेस अधिवेशन से 1905 के बंग-भंग विरोधी आंदोलन तक इसकी यात्रा, 1937 का कांग्रेस-संकल्प तथा 1950 में संविधान सभा द्वारा प्रदत्त संवैधानिक प्रतिष्ठा। द्वितीय आयाम दार्शनिक एवं धार्मिक है—मातृभूमि की देवी-कल्पना, अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त से चली आती भूमि-मातृत्व की परंपरा, शाक्त दर्शन की त्रिशक्ति-अवधारणा तथा श्री अरविंद द्वारा प्रतिपादित 'राष्ट्र ही शक्ति है' का सिद्धांत। शोधपत्र यह स्थापित करता है कि 'वन्दे मातरम्' का दिव्यत्व किसी संप्रदाय-विशेष की उपासना-पद्धति में नहीं, अपितु भूमि, प्रकृति और जन के प्रति व्यक्त श्रद्धा-भाव के काव्यात्मक उदात्तीकरण में निहित है। साथ ही इससे जुड़े ऐतिहासिक विवादों का तटस्थ मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया गया है।

बीजशब्द : *वन्दे मातरम्, आनन्दमठ, राष्ट्रगीत, मातृभूमि, शाक्त परंपरा, श्री अरविंद, स्वाधीनता आंदोलन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद।*

प्रस्तावना : राष्ट्र केवल भौगोलिक सीमाओं का संकलन नहीं होता; वह स्मृतियों, प्रतीकों और सामूहिक भावनाओं का संगठित रूप भी है। आधुनिक भारत के निर्माण में जिन कुछ प्रतीकों ने निर्णायक भूमिका निभाई, उनमें 'वन्दे मातरम्' का स्थान अन्यतम है। यह मात्र एक गीत नहीं, अपितु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जन्मी उस चेतना का घोषणापत्र है जिसने परतंत्र भारत को अपनी अस्मिता का बोध कराया। जिस समय अंग्रेजी शासन के औपनिवेशिक विमर्श में भारत को एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' मात्र कहा जा रहा था, उस समय बंकिमचंद्र ने इस भूमि को

'माता' के रूप में संबोधित करके एक ऐसी भावभूमि रची जिसमें भूगोल संवेदना में और संवेदना श्रद्धा में रूपांतरित हो गई।

इस रचना की विशिष्टता यह है कि यह एक साथ तीन स्तरों पर सक्रिय रहती है—साहित्यिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक। साहित्यिक स्तर पर यह संस्कृत की स्तोत्र-परंपरा से पोषित एक सुगठित काव्य है; राजनीतिक स्तर पर यह उपनिवेशवाद के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध का उद्घोष है; और आध्यात्मिक स्तर पर यह भूमि को दिव्य सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करने वाली भारतीय परंपरा की आधुनिक अभिव्यक्ति है। इन तीनों स्तरों की परस्पर अंतःक्रिया ही इसके प्रभाव का रहस्य है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य तीन प्रमुख प्रश्नों का उत्तर खोजना है। प्रथम, किन ऐतिहासिक परिस्थितियों ने इस रचना को जन्म दिया और वह किस प्रकार एक उपन्यास के भीतर रचे गए गीत से राष्ट्र का सामूहिक स्वर बन गई? द्वितीय, इस गीत में निहित 'दिव्यत्व' की प्रकृति क्या है—क्या वह किसी विशिष्ट धार्मिक उपासना का विस्तार है अथवा एक व्यापक सांस्कृतिक जीवन-दृष्टि की काव्यात्मक परिणति? तृतीय, इससे जुड़े ऐतिहासिक विवादों का स्वरूप क्या रहा और उनका समाधान किन सैद्धांतिक आधारों पर खोजा गया? शोध-प्रविधि की दृष्टि से यह अध्ययन ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक तथा पाठ-केंद्रित पद्धति पर आधारित है। इसमें मूल कृति 'आनन्दमठ', श्री अरविंद के लेखन, संविधान सभा की कार्यवाही तथा समकालीन शोध-साहित्य को प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। विवेचन में तटस्थता का निर्वाह करते हुए समर्थक एवं आलोचनात्मक—दोनों दृष्टिकोणों को स्थान दिया गया है।

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (1838–1894) : बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय आधुनिक भारतीय गद्य के आदि-निर्माताओं में गिने जाते हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम स्नातकों में से एक बंकिमचंद्र ने ब्रिटिश सरकार में डिप्टी मजिस्ट्रेट एवं डिप्टी कलेक्टर के रूप में लंबी सेवा की। यहीं उनके व्यक्तित्व की वह द्वैतता जन्म लेती है जो उनके समस्त लेखन को अनुप्राणित करती है—एक ओर औपनिवेशिक प्रशासन का अधिकारी, दूसरी ओर उस प्रशासन की सांस्कृतिक अवमानना से आहत सर्जक। 'बंगदर्शन' पत्रिका (1872) के माध्यम से उन्होंने बांग्ला गद्य को विचार-विमर्श की सक्षम भाषा बनाया और 'दुर्गेशनंदिनी', 'कपालकुंडला', 'विषवृक्ष' तथा 'आनन्दमठ' जैसी कृतियों से उपन्यास-विधा को भारतीय मृत्तिका में रोपा।

बंकिम का चिंतन केवल साहित्यिक नहीं था। 'धर्मतत्त्व' और 'कृष्णचरित्र' जैसी कृतियों में उन्होंने भारतीय धर्म की पुनर्व्याख्या का प्रयास किया—उसे कर्मयोग, अनुशासन और सामाजिक दायित्व के आधुनिक मुहावरे में ढालते हुए। 'वन्दे मातरम्' इसी वैचारिक भूमि की उपज है: यह भक्ति को निष्क्रिय समर्पण से हटाकर सक्रिय राष्ट्र-सेवा से जोड़ने का प्रयास है।

उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाल की पृष्ठभूमि : रचना का जन्म जिस युग में हुआ, वह बंगाल के लिए गहन आत्ममंथन का काल था। 1857 के संग्राम की पराजय के पश्चात प्रत्यक्ष ब्रिटिश राजसत्ता की स्थापना हो चुकी थी। 1770 के भीषण दुर्भिक्ष की स्मृति, स्थायी बंदोबस्त से उपजी कृषक-दुर्दशा और औपनिवेशिक शिक्षा-नीति से उत्पन्न सांस्कृतिक हीनताबोध—इन सबने शिक्षित बंगाली मानस में एक गहरी बेचैनी भर दी थी। साथ ही ब्रह्म समाज, रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद की परंपरा से उपजा नवजागरण भारतीय आत्मगौरव की पुनर्स्थापना का मार्ग खोज रहा था।
प्रचलित अनुश्रुति के अनुसार सरकारी समारोहों में 'गॉड सेव द क्वीन' गाए जाने की अनिवार्यता ने बंकिम के मन में यह प्रश्न जगाया कि क्या इस देश का अपना कोई ऐसा स्वर नहीं हो सकता जो उसकी अपनी माटी की वंदना करे। इसी प्रश्न का उत्तर 'वन्दे मातरम्' के रूप में प्रकट हुआ। परंपरा के अनुसार इस गीत की रचना अक्षय नवमी के दिन—7 नवंबर 1875 को—नैहाटी स्थित कांठालपाड़ा में हुई।

'आनन्दमठ' में समावेश : रचना के लगभग छह वर्ष बाद बंकिम ने इसे अपने उपन्यास 'आनन्दमठ' में स्थान दिया, जो 'बंगदर्शन' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होकर 1882 में पुस्तकाकार आया। उपन्यास की पृष्ठभूमि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का संन्यासी-विद्रोह और 1770 का महादुर्भिक्ष है। कथा में 'संतान' नामक व्रती संन्यासियों का एक संगठन मातृभूमि की मुक्ति के लिए संगठित होता है और यह गीत उनका दीक्षा-मंत्र बनता है। महेंद्र नामक पात्र जब भवानंद से पूछता है कि यह 'माता' कौन है, तो उत्तर मिलता है कि यही जन्मभूमि ही उनकी माता है—न कोई अन्य माता, न पिता, न भ्राता।

यह प्रसंग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहीं गीत की व्याख्या स्वयं रचनाकार द्वारा दे दी जाती है: वंदना का विषय कोई पौराणिक देवी नहीं, अपितु जन्मभूमि है, जिसे देवी-रूप में देखा जा रहा है। उपन्यास का यह आख्यानात्मक ढाँचा आगे चलकर विवाद का भी कारण बना, क्योंकि आलोचकों ने गीत को उसके कथा-संदर्भ से जोड़कर पढ़ने का आग्रह किया।

गीत की संरचना छह पदों में है। आरंभिक दो पद प्रायः शुद्ध संस्कृत में हैं, जबकि परवर्ती पदों में बांग्ला शब्दावली और वाक्य-विन्यास का सम्मिश्रण बढ़ता जाता है। यह द्विभाषिकता आकस्मिक नहीं—संस्कृत उसे अखिल भारतीय, कालातीत और स्तोत्रात्मक गरिमा देती है, जबकि बांग्ला उसे स्थानीय, सजीव और भावाकुल बनाती है। राष्ट्रगीत के रूप में जिन दो पदों को अंगीकार किया गया, वे इस प्रकार हैं—

वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्॥

'वन्दे' संस्कृत की 'वन्द्' धातु का उत्तम पुरुष एकवचन आत्मनेपदी रूप है, जिसका अर्थ है—मैं अभिवादन करता हूँ, मैं नमन करता हूँ, मैं स्तुति करता हूँ। ध्यातव्य है कि यह धातु 'पूजा' या 'अर्चना' का पर्याय नहीं, अपितु श्रद्धापूर्वक प्रणाम का द्योतक है। यह भाषिक सूक्ष्मता महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि गीत पर लगे 'मूर्तिपूजा' संबंधी आक्षेपों का उत्तर इसी में निहित है। 'मातरम्' 'मातृ' शब्द का द्वितीया विभक्ति एकवचन रूप है—अर्थात 'माता को'। इस प्रकार आरंभिक पंक्ति का सीधा अर्थ है: 'माता, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।'

प्रथम पद का बिंब-विधान पूर्णतः प्रकृति-आधारित है। 'सुजला' अर्थात उत्तम जल से युक्त—यह नदियों के देश का स्मरण है; 'सुफला' अर्थात उत्तम फल देने वाली—यह उर्वरता का उद्घोष है; 'मलयजशीतला' अर्थात मलय पर्वत की चंदन-सुगंधित वायु से शीतल; 'शस्यश्यामला' अर्थात लहलहाती फसलों से हरीतिमामय। इन विशेषणों में कहीं कोई देवी-प्रतिमा नहीं, कोई आयुध नहीं, कोई वाहन नहीं—केवल भूमि का सजीव, कृतज्ञ चित्रण है। दूसरे पद में यह चित्र रात्रि की ओर मुड़ता है—चाँदनी से पुलकित यामिनी, फूलों से लदे वृक्षों की शोभा—और फिर अचानक भूमि का मानवीकरण हो जाता है: 'सुहासिनी', 'सुमधुरभाषिणी'। यहीं वह काव्यात्मक छलाँग है जिससे भूगोल व्यक्तित्व में और व्यक्तित्व मातृत्व में परिणत होता है। 'सुखदां वरदां मातरम्' के साथ यह मातृत्व वरदायिनी शक्ति का रूप ले लेता है। रूपांतरण की यह प्रक्रिया क्रमिक, स्वाभाविक और अनुभवगम्य है—यही इस गीत की काव्य-सिद्धि है।

कोटि-कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले,
कोटि-कोटि भुजैर्धृत खरकरवाले,

के बॉले माँ तुमि अबले,
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्,
रिपुदलवारिणीं मातरम्। वन्दे मातरम्॥

तृतीय पद से गीत का स्वर बदलता है। यहाँ 'सप्तकोटि कंठ' और 'द्विसप्तकोटि भुज' की कल्पना आती है—अर्थात करोड़ों कंठों से गूँजता स्वर और करोड़ों भुजाओं में निहित बल। यह कल्पना गीता के विश्वरूप-दर्शन की परंपरा से जुड़ती है, किंतु यहाँ विराट रूप ईश्वर का नहीं, जन-समुदाय का है। माता की शक्ति उसकी संतानों की सामूहिक शक्ति है—यह अवधारणा राजनीतिक दृष्टि से क्रांतिकारी है, क्योंकि यह दैवी सत्ता को जन-सत्ता में अनूदित कर देती है।

तुमि विद्या तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वम् हि प्राणाः शरीरे, बाहुते तुमि माँ शक्ति,
हृदये तुमि माँ भक्ति, तोमारेई गडि मंदिरे-मंदिरे
वन्दे मातरम्॥
त्वम् हि दुर्गा दशप्रहरधारिणी,
कमला कमदलविहारिणी,
वाणी विद्या दायिनी, नमामि तवाम्,
नमामि कमलाम् अमलाम् अतुलाम्,
सुजलामं सुफलां मातरम्। वन्दे मातरम्॥

अंतिम पदों में देवी-प्रतीकों का स्पष्ट समावेश होता है—दुर्गा, कमला (लक्ष्मी) और वाणी (सरस्वती)। यहाँ भूमि शक्ति, समृद्धि और ज्ञान की त्रयी के रूप में परिकल्पित है।

भूमि-मातृत्व की वैदिक परंपरा : भूमि को माता के रूप में देखने की दृष्टि बंकिम की मौलिक उद्भावना नहीं, अपितु एक अत्यंत प्राचीन भारतीय परंपरा का पुनराविष्कार है। अथर्ववेद का पृथ्वी-सूक्त इसका आदि-स्रोत है, जिसमें ऋषि उद्घोष करता है कि पृथ्वी माता है और वह उसका पुत्र है। इस सूक्त में पृथ्वी की स्तुति उसके पर्वतों, वनों, नदियों और अन्न-उत्पादक सामर्थ्य के लिए की गई है—ठीक वही बिंब-पद्धति जो 'वन्दे मातरम्' के प्रथम पद में पुनः जीवित होती है। इस दृष्टि से गीत एक आधुनिक रचना होते हुए भी परंपरा की अखंड धारा से जुड़ा हुआ है।

भारतीय चिंतन में यह दृष्टि पर्यावरणीय नैतिकता का भी आधार रही है। यदि भूमि माता है तो उसका दोहन नहीं, पोषण अभीष्ट है; उससे स्वामित्व का नहीं, कृतज्ञता का संबंध बनता है। समकालीन पारिस्थितिक विमर्श के आलोक में गीत के इस पक्ष का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

बंगाल की धार्मिक चेतना पर शाक्त परंपरा का गहरा प्रभाव रहा है। इस परंपरा में परम तत्त्व को स्त्रीरूपा शक्ति के रूप में देखा जाता है—वह शक्ति जो सृजन, पोषण और संहार तीनों की अधिष्ठात्री है। 'वन्दे मातरम्' के परवर्ती पदों में दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती की त्रयी वस्तुतः इसी शाक्त दर्शन की अभिव्यक्ति है। यहाँ मातृभूमि को केवल पोषिका नहीं, अपितु रक्षिका, ऐश्वर्यदायिनी और ज्ञानदायिनी—तीनों रूपों में देखा गया है। इस त्रयी का राजनीतिक निहितार्थ भी है। एक परतंत्र राष्ट्र को तीन ही वस्तुएँ चाहिए—रक्षा का बल (दुर्गा), आर्थिक समृद्धि (लक्ष्मी) और ज्ञान-विवेक (सरस्वती)। इस प्रकार धार्मिक प्रतीक यहाँ राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रम का रूपक बन जाते हैं। यह बंकिम की वह विशिष्ट पद्धति है जिसमें धार्मिक शब्दावली को ऐतिहासिक कर्तव्य-बोध में रूपांतरित किया जाता है।

श्री अरविंद की व्याख्या : राष्ट्र ही शक्ति है : गीत के दिव्यत्व की सर्वाधिक व्यवस्थित दार्शनिक व्याख्या श्री अरविंद ने प्रस्तुत की। उन्होंने 1909 में 'कर्मयोगिन' में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया और अनेक स्थलों पर यह

प्रतिपादित किया कि राष्ट्र कोई निर्जीव भूखंड अथवा प्रशासनिक इकाई नहीं, अपितु एक जीवंत आध्यात्मिक सत्ता है। उनके अनुसार भारत की भूमि, उसका जन और उसकी संस्कृति मिलकर जिस समष्टि का निर्माण करते हैं, वही मातृशक्ति है; अतः राष्ट्र-सेवा वस्तुतः उपासना का ही रूप है।

अरविंद ने इसी आधार पर 'भवानी मंदिर' जैसी रचना में मातृभूमि को शक्ति के मंदिर के रूप में प्रतिष्ठित करने का विचार रखा। उनकी व्याख्या में 'वन्दे मातरम्' एक मंत्र है—ऐसा मंत्र जो व्यक्ति की चेतना को व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख करता है। यहीं गीत का दिव्यत्व अपनी पूर्णता पाता है: दिव्य वह है जो व्यक्ति को अपने संकुचित अहं से ऊपर उठाकर एक विराट उद्देश्य से जोड़ दे।

राष्ट्र का स्त्री-रूप में मानवीकरण विश्व की अनेक संस्कृतियों में मिलता है—ब्रिटेन की 'ब्रिटानिया', फ़्रांस की 'मारीआन' अथवा रूस की 'मातृभूमि' की प्रतिमाएँ इसके उदाहरण हैं। किंतु इन प्रतीकों और 'वन्दे मातरम्' की मातृ-कल्पना में एक मूलभूत अंतर है। पाश्चात्य प्रतीक मुख्यतः रूपकात्मक (allegorical) हैं—वे राष्ट्र के गुणों का कलात्मक मानवीकरण करते हैं, किंतु उनके प्रति श्रद्धा का भाव धार्मिक नहीं होता। इसके विपरीत भारतीय परंपरा में भूमि-मातृत्व एक जीवंत आस्था-भाव है, जिसकी जड़ें वैदिक कर्मकांड, तीर्थ-परंपरा और नदी-वंदना में गहरी हैं।

यही अंतर 'वन्दे मातरम्' के दिव्यत्व को समझने की कुंजी है। यहाँ भूमि केवल रूपक नहीं, अनुभूति का विषय है। तीर्थयात्रा की सुदीर्घ परंपरा—जिसमें उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक की भूमि एक पवित्र भूगोल के रूप में परिकल्पित है—इस भाव की सांस्कृतिक पूर्वपीठिका है। बंकिम ने इसी पूर्वपीठिका को आधुनिक राजनीतिक चेतना से जोड़ दिया। यही कारण है कि यह गीत जिस भावनात्मक गहराई तक पहुँचा, वह किसी विशुद्ध रूपकात्मक प्रतीक के लिए संभव नहीं थी।

दिव्यत्व का स्वरूप : एक सार्वभौम रचना : यहाँ एक मूलभूत प्रश्न उठता है—क्या यह दिव्यत्व किसी एक संप्रदाय की उपासना-पद्धति तक सीमित है? विवेचन से तीन बिंदु स्पष्ट होते हैं। प्रथम, गीत का केंद्रीय उपास्य कोई पौराणिक देवता नहीं, अपितु स्वयं जन्मभूमि है—और जन्मभूमि किसी एक समुदाय की नहीं होती। द्वितीय, गीत में प्रयुक्त 'वन्दे' शब्द अर्चना नहीं, अभिवादन का सूचक है। तृतीय, प्रथम दो पदों में—जो औपचारिक रूप से अंगीकृत हैं—कोई भी देवी-नाम अथवा उपासना-सूचक शब्द उपस्थित नहीं है।

तथापि यह स्वीकार करना होगा कि पूर्ण गीत में देवी-प्रतीकों की उपस्थिति है और उसका कथा-संदर्भ एक विशिष्ट ऐतिहासिक संघर्ष से जुड़ा है। आलोचनात्मक विद्वत्-परंपरा—विशेषतः तनिका सरकार तथा सुमति रामास्वामी जैसी विदुषियों—ने यह प्रश्न भी उठाया है कि राष्ट्र की मातृ-कल्पना स्त्री को 'पूज्य किंतु रक्षणीय' की भूमिका में सीमित कर सकती है। एक संतुलित शोध-दृष्टि इन दोनों पक्षों को स्वीकार करती है: गीत का मूल भाव सार्वभौम है, किंतु उसकी ऐतिहासिक ग्रहणशीलता संदर्भ-सापेक्ष रही है।

स्वाधीनता-संग्राम में यात्रा

1896 : प्रथम सार्वजनिक स्वर : गीत का राजनीतिक जीवन 1896 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन से आरंभ होता है, जहाँ रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे स्वरबद्ध करके गाया। यही वह क्षण है जब एक उपन्यास के भीतर की पंक्तियाँ राष्ट्रीय मंच का स्वर बन गईं। रवीन्द्रनाथ द्वारा दी गई देश राग पर आधारित धुन आगे चलकर इसकी प्रामाणिक संगीत-पहचान बनी।

1905 : बंग-भंग और जन-मंत्र : 1905 में लॉर्ड कर्ज़न द्वारा बंगाल-विभाजन की घोषणा ने गीत को जन-आंदोलन का मंत्र बना दिया। स्वदेशी आंदोलन की सभाओं, जुलूसों और प्रभात-फेरियों में 'वन्दे मातरम्' का उद्घोष गूँजने लगा। यह मात्र गीत नहीं रहा—यह अभिवादन बना, संकेत-शब्द बना, और अंततः प्रतिरोध का प्रतीक बना। स्थिति यह हुई कि प्रशासन ने अनेक स्थानों पर इसके सार्वजनिक उद्घोष पर प्रतिबंध लगाया; बारीसाल में इसे गाने वाले स्वयंसेवकों पर

लाठीचार्ज हुआ। दमन ने प्रतीक को और भी शक्तिशाली बना दिया।

क्रांतिकारी आंदोलन और पत्रकारिता : अनुशीलन समिति और युगांतर जैसे क्रांतिकारी संगठनों के लिए यह दीक्षा-मंत्र बन गया। यह अनुश्रुति व्यापक रूप से प्रचलित है कि खुदीराम बोस सहित अनेक बलिदानियों ने फाँसी के तख्ते पर इसी उद्घोष के साथ प्राण त्यागे। पत्रकारिता के क्षेत्र में बिपिनचंद्र पाल द्वारा आरंभ और श्री अरविंद द्वारा संपादित 'वन्दे मातरम्' दैनिक ने उग्र राष्ट्रवाद की वैचारिक भूमि तैयार की; लाला लाजपत राय ने लाहौर से इसी नाम से पत्र निकाला। 1907 में स्टटगार्ट में मैडम भीकाजी कामा द्वारा फहराए गए ध्वज पर देवनागरी में 'वन्दे मातरम्' अंकित था—यह इस उद्घोष का अंतरराष्ट्रीय पदार्पण था।

बंगाल से अखिल भारत तक : आरंभ में बंगाल तक सीमित यह उद्घोष शीघ्र ही समूचे भारत में फैल गया। महाराष्ट्र में तिलक की परंपरा से जुड़े कार्यकर्ताओं ने, पंजाब में लाला लाजपत राय के अनुयायियों ने और दक्षिण में सुब्रह्मण्य भारती जैसे कवियों ने इसे अपनी-अपनी भाषिक चेतना में आत्मसात किया। विभिन्न भारतीय भाषाओं में इसके अनुवाद हुए और स्थानीय संगीत-परंपराओं के अनुरूप अनेक धुनें बनीं। असहयोग आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन के काल में भी यह जुलूसों का प्रमुख स्वर बना रहा। इस प्रसार ने सिद्ध किया कि इसकी अपील किसी क्षेत्र-विशेष की नहीं, अपितु साझा राष्ट्रीय अनुभव की थी।

इस प्रकार तीन दशकों में यह गीत साहित्य से निकलकर आंदोलन की भाषा बन गया। इसकी सफलता का कारण इसकी वह सांकेतिक सघनता थी जिससे दो शब्दों में ही समूचा राजनीतिक कार्यक्रम अभिव्यक्त हो जाता था। 1920 के दशक के उत्तरार्ध से गीत को लेकर आपत्तियाँ मुखर होने लगीं। मुख्य आपत्तियाँ दो थीं—प्रथम, परवर्ती पदों में देवी-प्रतीकों की उपस्थिति, जो एकेश्वरवादी आस्था रखने वाले कुछ समुदायों को असहज करती थी; द्वितीय, गीत का 'आनन्दमठ' से जुड़ा कथा-संदर्भ, जिसकी व्याख्या को लेकर मतभेद थे। यह विवाद उस व्यापक राजनीतिक ध्रुवीकरण का अंग था जो उस दशक में तीव्र हो रहा था।

कांग्रेस ने इस प्रश्न को टालने के स्थान पर उसका विवेकसम्मत समाधान खोजने का प्रयास किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मत दिया कि गीत के आरंभिक पद विशुद्ध रूप से मातृभूमि की प्रकृति-वंदना हैं और उनमें किसी भी आस्था के लिए आपत्तिजनक कुछ नहीं है, जबकि परवर्ती पदों की प्रतीक-व्यवस्था विशिष्ट सांस्कृतिक संदर्भ की माँग करती है। इसी परामर्श के आधार पर अक्टूबर 1937 में कांग्रेस कार्यसमिति ने संकल्प लिया कि राष्ट्रीय अवसरों पर गीत के प्रथम दो पद ही गाए जाएँगे और अन्य राष्ट्रीय गीतों के गायन की भी स्वतंत्रता रहेगी। शोध-दृष्टि से यह निर्णय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह प्रतीकों के प्रति कट्टरता और उनके पूर्ण परित्याग—दोनों अतियों से बचते हुए एक मध्यमार्ग की खोज थी। यह उदाहरण दर्शाता है कि राष्ट्रीय आंदोलन ने बहुलतावादी समाज में प्रतीक-निर्माण की जटिलता को स्वीकार किया और संवाद के माध्यम से समाधान निकाला।

संवैधानिक स्थिति एवं विधिक विवेचन : स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्रीय प्रतीकों के निर्धारण का प्रश्न संविधान सभा के समक्ष आया। 24 जनवरी 1950 को सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया कि 'जन गण मन' राष्ट्रगान होगा, तथा 'वन्दे मातरम्', जिसने स्वाधीनता-संग्राम में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है, उसे राष्ट्रगान के समान ही सम्मान प्राप्त होगा। यह वक्तव्य किसी अनुच्छेद के रूप में संविधान में सम्मिलित नहीं है, अपितु सभा की कार्यवाही का अंग है—और यही इसकी विशिष्ट विधिक स्थिति का आधार है।

व्यावहारिक परिणाम यह रहा कि राष्ट्रगीत को राष्ट्रगान के समकक्ष सम्मान प्राप्त नहीं था उसके गायन के लिए वैसी संहिताबद्ध आचार-संहिता निर्धारित नहीं थी जैसी राष्ट्रगान के लिए होती है। वन्दे मातरम् बिल (राष्ट्रीय सम्मान के अपमान की रोकथाम संशोधन विधेयक, 2026) जिसका उद्देश्य ही यह है कि वन्दे मातरम् को भी राष्ट्रगान की तरह ही क़ानूनी संरक्षण व उसके बराबर का दर्जा मिले। राष्ट्रपति की मंजूरी के साथ ही वन्दे मातरम् के गायन में

जानबूझकर बाधा डालना अब अपराध माना जायेगा। यह कानून राष्ट्रीय गीत को राष्ट्रीय गान के बराबर का दर्जा देता है।

संविधान के अनुच्छेद 51क में मूल कर्तव्यों के अंतर्गत राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का उल्लेख है; राष्ट्रगीत का पृथक उल्लेख नहीं है। न्यायालयों ने भी विभिन्न अवसरों पर यह दृष्टिकोण अपनाया है कि गीत के प्रति सम्मान वांछनीय है, किंतु किसी व्यक्ति को उसे गाने के लिए विधिक रूप से बाध्य करना अभिव्यक्ति एवं धार्मिक स्वतंत्रता संबंधी संवैधानिक प्रावधानों के आलोक में विचारणीय विषय है। यह संतुलन भारतीय संवैधानिक दर्शन की उस मूल भावना के अनुरूप है जिसमें देशभक्ति स्वैच्छिक श्रद्धा है, आरोपित अनुशासन नहीं।

गीत की मूल स्वर-रचना का श्रेय बंकिम के समकालीन संगीतज्ञ यदुनाथ भट्टाचार्य को दिया जाता है, किंतु जन-मानस में जो धुन प्रतिष्ठित हुई वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा देश राग में निबद्ध रूप है। स्वतंत्रता के पश्चात आकाशवाणी द्वारा प्रसारित संस्करण ने इसे मानक रूप दिया, जिसकी अवधि लगभग पैंसठ सेकंड निर्धारित हुई।

लोकप्रिय संस्कृति में इसकी यात्रा भी उल्लेखनीय है। 1952 की फ़िल्म 'आनंदमठ' में इसका सिने-संस्करण प्रस्तुत हुआ। 1997 में स्वतंत्रता की स्वर्ण-जयंती के अवसर पर ए. आर. रहमान द्वारा प्रस्तुत 'माँ तुझे सलाम' एलबम ने इसे एक नई पीढ़ी से जोड़ा; 2002 में बीबीसी वर्ल्ड सर्विस द्वारा कराए गए एक अंतरराष्ट्रीय जनमत-सर्वेक्षण में यह विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय गीतों की सूची में उच्च स्थान पर रहा। यह तथ्य दर्शाता है कि गीत की अपील केवल ऐतिहासिक स्मृति तक सीमित नहीं, अपितु उसमें सौंदर्यात्मक जीवंतता भी है।

समकालीन प्रासंगिकता : सार्ध-शताब्दी वर्ष : 7 नवंबर 2025 को इस रचना ने अपने एक सौ पचास वर्ष पूर्ण किए। भारत सरकार ने इस अवसर पर 7 नवंबर 2025 से 7 नवंबर 2026 तक वर्षपर्यंत चलने वाले स्मरणोत्सव की घोषणा की, जिसका शुभारंभ नई दिल्ली में हुआ और जिस अवसर पर स्मारक डाक टिकट एवं सिक्का जारी किया गया। कार्यक्रम को चार चरणों में विभाजित किया गया—शुभारंभ सप्ताह, गणतंत्र दिवस से जुड़ा चरण, स्वतंत्रता दिवस के साथ 'हर घर तिरंगा' अभियान से संबद्ध चरण, तथा नवंबर 2026 का समापन सप्ताह। देशभर में सार्वजनिक स्थलों पर सामूहिक गायन का आयोजन इस स्मरणोत्सव का प्रमुख अंग रहा।

शोध की दृष्टि से यह अवसर केवल उत्सव का नहीं, पुनर्पाठ का भी है। सार्ध-शताब्दी हमें यह विचार करने का अवसर देती है कि एक उन्नीसवीं शताब्दी की रचना इक्कीसवीं शताब्दी के बहुलतावादी, तकनीक-संचालित और वैश्विक भारत में किस अर्थ में प्रासंगिक है। इसका उत्तर संभवतः इसकी उस मूल भावना में है जो भूमि, प्रकृति और जन के प्रति कृतज्ञता का बोध कराती है—एक ऐसा बोध जो पारिस्थितिक संकट और सामाजिक विखंडन के इस युग में पहले से कहीं अधिक आवश्यक है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अनुशीलन के आधार पर कुछ प्रमुख निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। प्रथम, 'वन्दे मातरम्' का ऐतिहासिक महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि इसने भारतीय राष्ट्रवाद को एक भावनात्मक शब्दावली प्रदान की। राजनीतिक आंदोलनों को केवल तर्क नहीं, प्रतीक भी चाहिए होते हैं; इस गीत ने वह प्रतीक उपलब्ध कराया और उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष को जन-भावना से जोड़ा।

द्वितीय, इसका दिव्यत्व मूलतः किसी उपासना-पद्धति का विस्तार नहीं, अपितु भूमि के प्रति व्यक्त कृतज्ञता का काव्यात्मक उदात्तीकरण है। अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त से लेकर श्री अरविंद की व्याख्या तक चलती इस धारा में 'दिव्य' का अर्थ है—वह जो व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर उठाकर समष्टि से जोड़े। इस अर्थ में गीत का दिव्यत्व सार्वभौम है। तृतीय, इससे जुड़े विवादों का इतिहास भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता का भी इतिहास है। 1937 का संकल्प और 1950 का संविधान सभा-वक्तव्य दर्शाते हैं कि राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रश्न को संवाद, विवेक और परस्पर सम्मान के आधार पर सुलझाया गया। यह पद्धति स्वयं में एक स्थायी शिक्षा है।

अंततः, डेढ़ शताब्दी की यात्रा के पश्चात यह गीत आज भी जीवंत है, क्योंकि इसका मूल भाव—अपनी भूमि के प्रति श्रद्धा—किसी युग, संप्रदाय अथवा राजनीतिक विचारधारा की सीमा में नहीं बांधता। भावी शोध के लिए यहाँ अनेक दिशाएँ खुली हैं: गीत के विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुए अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन, इसकी संगीत-परंपरा का शास्त्रीय विश्लेषण, तथा पारिस्थितिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में इसके मातृभूमि-बिंब का पुनर्पाठ।

संदर्भ-सूची :

1. चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र. आनन्दमठ. कलकत्ता, 1882 (हिंदी अनुवाद : विविध संस्करण).
2. चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र. धर्मतत्त्व एवं कृष्णचरित्र. बंकिम रचनावली, साहित्य संसद, कलकत्ता.
3. श्री अरविंद. 'वन्दे मातरम्' (अनुवाद), कर्मयोगिन, 1909; तथा भवानी मंदिर. श्री अरविंद आश्रम, पुदुच्चेरी.
4. भट्टाचार्य, सव्यसाची. Vande Mataram: The Biography of a Song. पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2003.
5. सरकार, तनिका. Hindu Wife, Hindu Nation: Community, Religion and Cultural Nationalism. परमानेंट ब्लैक, दिल्ली, 2001.
6. रामास्वामी, सुमति. The Goddess and the Nation: Mapping Mother India. ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010.
7. अथर्ववेद, पृथ्वी-सूक्त (काण्ड 12, सूक्त 1).
8. संविधान सभा वाद-विवाद (Constituent Assembly Debates), खंड बारह, 24 जनवरी 1950, अध्यक्षीय वक्तव्य.
9. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ. जवाहरलाल नेहरू को लिखे पत्र, 1937 (संकलित पत्राचार).
10. चंद्र, बिपन एवं अन्य. India's Struggle for Independence. पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 1988.
11. त्रिपाठी, अमलेश. The Extremist Challenge. ओरिएंट लांगमैन, कलकत्ता, 1967.
12. दास, शिशिर कुमार. A History of Indian Literature, 1800–1910. साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली.
13. पत्र सूचना कार्यालय (PIB), भारत सरकार. 'वन्दे मातरम् के 150 वर्ष' — पृष्ठभूमि पत्र, नवंबर 2025.
14. संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार. राष्ट्रीय गीत की सार्ध-शताब्दी : कार्यक्रम रूपरेखा, 2025–2026.

•